# सामाजिक स्तरीकरण पर शिक्षा के निजीकरण के प्रभाव

अमन मदान

इस लेख में मेरा मुख्य तर्क यह है कि भारत या अत्यधिक असमानता वाले किसी भी देश के लिए विद्यालयी या महाविद्यालयी शिक्षा का निजीकरण एक सन्तोषजनक समाधान नहीं हो सकता।

निजीकरण से यहाँ क्या आशय है, यह अगर स्पष्ट हो जाए तो शायद हमें बात को समझने में कुछ मदद मिलेगी। हालाँकि इस शब्द का और भी व्यापक अर्थ होने की दलील दी जा सकती है, इस लेख में निजीकरण की बात से मेरा मुख्यतौर पर तात्पर्य उन विद्यालयों या महाविद्यालयों से है जो माता–पिता से कोई शुल्क लेते हैं और उसका प्रयोग संसाधन के रूप में शिक्षकों के वेतन, स्कूल के संचालन आदि के लिए करते हैं। यहाँ उन विद्यालयों का जिक्र नहीं है जिनके खर्चे सरकार से मिले अनुदान या समुदाय से प्राप्त चन्दे या फिर परोपकारियों से प्राप्त सहायता से निकलते हैं। निजीकरण में मैं उन विद्यालयों और महाविद्यालयों की बढ़ती संख्या को भी शामिल करता हूँ जिनमें विद्यार्थी ऋण लेकर दाखिला हासिल करते हैं, क्योंकि यह खर्चा भी अन्ततः तो अकेले–अकेले विद्यार्थी और उनके माता–पिता की जेब से आता है। इसलिए सरकार द्वारा चलाया जा रहा वह विद्यालय भी, जिसके अधिकतर खर्चे विद्यालय को मिले शुल्क से निकलते हैं, निजीकरण का ही एक रूप होगा। जब आप शिक्षा का अधिकतर भौतिक खर्च एक विद्यार्थी से अदा करने को कहते हैं तो आप मूलतौर पर समाज में निज के विचार पर निर्भर हो रहे होते हैं, क्योंकि एक निजी व्यक्ति अपने निजी हितों के बदले में कुछ दाम दे रहा होता है। यह उस स्थिति से हटकर है जहाँ समाज शिक्षा के अधिकतर भौतिक खर्च को वहन करता है जबकि बदले में व्यक्ति और समुदाय, दोनों को मिले–जुले निजी और सार्वजनिक लाभ प्राप्त हो रहे होते हैं।

मुद्दे तो और भी हैं – जैसे, नवउदारवाद की संस्कृति और सोच का बढ़ना, यह सवाल कि क्या शिक्षा के क्षेत्र में काम करने के लिए पसन्द या चयन तथा बाजार की प्रक्रियाएँ सबसे बेहतर तरीका हैं और क्या सामाजिक हितों का सबसे बेहतर प्रतिनिधित्व राज्य द्वारा किया जाता है आदि। लेकिन इस लेख में मैं इन मुद्दों को नहीं उठाना चाहूँगा। यहाँ मैं स्वयं को गैर–बराबरी पर आधारित एक समाज में निजी निवेश और निजी लाभ की समस्या तक सीमित रखूँगा।

मेरी बुनियादी दलील यह है कि एक समाज में अगर कई आर्थिक वर्ग हैं तो मुख्य तौर से माता–पिता के धन के दम पर चलने वाली शिक्षा सामाजिक असमानता को और अधिक बढ़ाने की ओर प्रवृत्त होगी।

यह बात खासतौर से उन समाजों पर लागू होती है जिनमें अधिक कमाई वाले काम तुलनात्मक दृष्टि से कम हैं और इतने नहीं हैं कि सब विद्यार्थी उनमें खप पाएँ। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगी।

### भारत में वर्ग–आधारित असमानता

भारत में वर्ग–आधारित असमानता को समझने के कई तरीके हैं। इनमें से सबसे बेहतर तरीका वर्गों को एक–दूसरे के साथ उनके संरचनात्मक सम्बन्धों के सन्दर्भ में स्थित करने का है। यह सही है कि वर्ग स्वयं में स्वतंत्र नहीं होते और जाति, क्षेत्र, लैंगिकता, धर्म, नस्ल आदि के साथ उनका गहरा अन्तर्सम्बन्ध होता है। हमारे उदाहरण के लिए वर्ग असमानता को दर्शाने के लिए एक सरल सा तरीका पर्याप्त होगा – बस यह पूछा जाए कि भारत में कितने लोग अमीर हैं और कितने गरीब। यह आमतौर पर परिवारों की आय की तालिका के माध्यम से दर्शाया जाता है लेकिन क्योंकि बहुत से लोग अपनी असली आय बताने से बचते हैं, इसलिए प्रचलन उपभोग के बारे में जानकारी एकत्र करके जाँचने–विश्लेषित करने का है। सर्वेक्षणों में पूछा जाता है कि पिछले महीने में कितना आहार खरीदा या प्रयोग किया गया, स्कूल के लिए कितनी फीस दी गई, कितनी पत्रिकाएँ खरीदी गईं, सिनेमा पर कितना खर्च किया गया आदि–आदि। यह विभिन्न परिवारों और व्यक्तियों की सम्पत्ति की तुलना करने का एक लाभदायक तरीका है। 2011–12 में

68वें राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण में भारत में 1,01,723 घरों का सर्वेक्षण किया गया जिसमें अन्य बातों के अलावा उपभोग पर किए गए खर्च के बारे में पूछा गया। घर के सदस्यों की संख्या क्योंकि अलग–अलग रहती है तथा एक ओर 20 हजार रुपए प्रति–माह की कमाई वाले छह सदस्यों वाले घर तथा दूसरी ओर इतनी ही कमाई वाले एक बेफिक्र कुँआरे की स्थितियाँ बिल्कुल अलग–अलग होंगी, इसलिए उपभोग पर किए गए खर्च को परिवार के सदस्यों की संख्या से भाग कर दिया गया और इस प्रकार प्राप्त आँकड़े को प्रति–माह प्रति–व्यक्ति उपभोग खर्च (मन्थली पर कैपिटा कन्ज़म्पशन एक्स्पेन्डिचर – एम.पी.सी.ई.) कह दिया गया। प्रति–माह प्रति–व्यक्ति उपभोग–खर्च के अलग–अलग योग वाली भारत की जनसंख्या का प्रतिशत तालिका में दिया हुआ है।

| रुपयों में खर्च (एम.पी.सी.ई) | परिवारों का प्रतिशत | समुच्च्य प्रतिशत |
|---|---|---|
| <1000 | 33.3 | 33.3 |
| 1000 < 2000 | 42.1 | 75.5 |
| 2000 < 3000 | 13.1 | 88.5 |
| 3000 < 4000 | 5.4 | 93.9 |
| 4000 < 5000 | 2.3 | 96.3 |
| 5000 < 6000 | 1.3 | 97.6 |
| 6000 < 7000 | 0.7 | 98.3 |
| 7000 < 8000 | 0.4 | 98.7 |
| 8000 < 9000 | 0.3 | 99.0 |
| 9000 <10,000 | 0.2 | 99.3 |
| >10,0000 | 0.7 | 100.0 |

इससे पता चलता है कि 2011–12 में भारत के 33.3% लोग 1000 रुपए प्रति–माह से भी कम पर रह रहे थे और करीब 75% 2000 रुपये प्रति–व्यक्ति प्रति–माह से भी कम पर। इसकी तुलना में मध्य से ऊपरी स्तर का भारतीय मैनेजर 10,000 रुपए प्रति–व्यक्ति प्रति–माह से भी काफी अधिक का उपभोग करता होगा। 0.7% का आँकड़ा बहुत छोटा लगता है लेकिन ध्यान रहे कि यह प्रतिशत 1 अरब 20 करोड़ लोगों के देश का है यानी इस आय–समूह में 84 लाख लोग शामिल हैं। यह आँकड़ा इतना बड़ा है कि इस समूह में शामिल लोग अपने ही वर्ग के लोगों से घिरे रहते हैं और बहुत से बहुत गरीब लोगों को देख भी नहीं पाते। सच्चाई तो यह है कि इस देश में 75% लोग ऐसे हैं जिन्हें 2000 रुपए प्रति–व्यक्ति प्रति–माह की आय पर जीवित रहना पड़ता है, जिसमें भोजन, दवा, कपड़े, विद्यालय और महाविद्यालय की फीस, सब खर्च शामिल हैं।

इस तालिका में हमें ऐसी सामग्री मिलती है जिसके परिप्रेक्ष्य में स्कूली शिक्षा के खर्चों को जाँचा–तौला जा सकता है। इससे हमें यह बेहतर समझने में मदद मिलेगी कि परिवार (न कि समाज) से शिक्षा का खर्च वहन किए जाने की अपेक्षा हो तो क्या होगा।

### एक निजी विद्यालय के खर्च

एक निजी विद्यालय या महाविद्यालय चलाने के खर्च का एक अन्दाजा फटाफट लगाया जा सकता है। सम्भावना है कि सबसे बड़ा खर्चा तो शिक्षकों पर होगा। (कुछ विद्यालय शिक्षकों को 4,000 रुपए प्रति माह देते हैं लेकिन आमतौर पर वे गुणवत्ता के मामले में बहुत ही खराब होते हैं)। देखते हैं कि एक काफी हद तक अच्छे और टिकाऊ शिक्षक पर कितना खर्च आता होगा – टिकाऊ से अर्थ है एक ऐसा शिक्षक जो किसी बेहतर जगह जाने के लिए पेशा बदलने को तैयार नहीं होगा। यह भी जरूरी है कि तनख्वाहें ऐसी हों कि कम से कम निम्न–मध्य वर्ग के लोग शिक्षण को अच्छे पेशे के तौर पर देखें और उसमें आने की अभिलाषा रखें, वे मेहनत करने के लिए और इस पेशे को पोषित करने के लिए प्रेरित हों – उसी तरह जैसे इंजिनियरिंग या अकाउंटिंग को मेहनत करने लायक माना जाता है। ऐसा नहीं होता तो हमें बहुत कम योग्यता–प्राप्त और अनिच्छुक शिक्षक मिलेंगे जो शिक्षण को एक जीवंत पेशे के रूप में विकसित करने को तैयार नहीं होंगे।

गैर–सरकारी संस्थाओं में काम करने वालों और छोटे शहरों के विद्यार्थियों से जब मैं पूछता हूँ कि उनके विचार से शिक्षकों के लिए एक अच्छी टिकाऊ तनख्वाह क्या होगी तो वे आमतौर पर 20 से 25 से 30 हजार रुपए की रकम का उल्लेख करते हैं। हम अगर 25,000 को लें तो उस विद्यार्थी के लिए फीस क्या होगी जिसके परिवार को स्कूल के खर्चे वहन करने हैं? 40 विद्यार्थियों की एक कक्षा के सन्दर्भ में यह एक शिक्षक की तनख्वाह के लिए करीब 625 रुपए प्रति विद्यार्थी बनता है। इसमें इमारत, बिजली, प्रशासन, सुरक्षा, कार्यशालाओं आदि के खर्चे जोड़े जा सकते हैं। यदि एक स्कूल को अपने खर्चे स्वयं ही निकालने हों और बहुत हद तक अच्छे शिक्षक रखने हों तो हैरत की बात नहीं होगी कि कम से कम 1000 रुपए माहवार की फीस तय करनी पड़े। जब मैं इस रकम को भारत में एम.पी.सी.ई. की तालिका

के सन्दर्भ में देखता हूँ तो एक बड़ा धक्का लगता है। क्या 2000 रुपए प्रति–व्यक्ति से भी कम पर जी रहे परिवार स्कूल की फीस के नाम पर 1000 रुपए माहवार दे सकते हैं? स्पष्ट है कि ऐसा कर पाना बहुत मुश्किल है। ध्यान रहे कि यहाँ हम भारत के 75% लोगों की बात कर रहे हैं।

निष्कर्ष तो साफ ही है। अगर हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षा का पूरा खर्च माता–पिता को उठाना है, तो अधिक धन वाले लोग उच्च दर की फीस दे सकेंगे और कुछ बेहतर शिक्षक पा सकेंगे। कम पैसे वाले लोगों को औसतन कम अच्छे शिक्षक मुहैया होंगे। कुछ अपवाद तो हो ही सकते हैं – जैसे कि वे प्रतिबद्ध और समर्पित शिक्षक जो वंचित और पिछड़े तबकों के बच्चों को निःस्वार्थ भाव से पढ़ाने के लिए स्वयं को कटिबद्ध करते हैं – असल में तो वे इस देश के नायक और नायिकाएँ हैं। लेकिन अधिकतर लोग इस तरह के नहीं होते। और जब हम सम्पूर्ण समाज के लिए व्यावहारिक प्रबन्ध की बात करते हैं तो हमें आम इन्सानों की बात करनी होगी और देखना होगा कि वे किस तरह अच्छे शिक्षक बनने के लिए तैयार हो सकते हैं, किन तरीकों से उन्हें ऐसा बनने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। हमें यह बात भी करना होगी कि इस तरह की व्यावहारिक व्यवस्थाएँ बनाने या न बनाने के सामाजिक परिणाम क्या होंगे। हम स्वयं को न्यौछावर करने को तैयार गिने–चुने लोगों पर निर्भर नहीं रह सकते।

### शिक्षा के निजीकरण के साथ बढ़ती असमानता

यदि किसी समाज में काफी हद तक सामाजिक असमानता है, जैसा कि हम अपने समाज में पाते हैं, तो शिक्षा के लिए निजी तौर पर अदा की गई कीमत के परिणाम उस कीमत को अदा करने की सामर्थ्य के विभाजन और फैलाव के समानान्तर होंगे। अधिक धनवान लोग कीमत चुकाकर शिक्षा का बेहतर स्तर और गुणवत्ता पा सकेंगे और कम पैसे वाले सीढ़ी के निचले पायदान पर ही रहेंगे। यदि शीर्षस्थ लोग और अधिक ताकतवर बनना चाहते हैं और केवल अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को बढ़ाने में लगे रहते हैं तो यह समाज, जिसका ढाँचा पहले से ही असमानता दर्शाते एक पिरामिड की तरह है, पहले से भी अधिक पिरामिडीय हो जाएगा (यानी शीर्ष पर बहुत कम लोग और नीचे बहुत अधिक)। निजी शिक्षा की वृद्धि पिरामिड के ऊपरी स्तर के लोगों के लिए मददगार होगी और नीचे के स्तर वालों को कमजोर बनाएगी।

ऊपर दिया गया उदाहरण वर्ग–आधारित असमानता और शिक्षा का था। लगभग ऐसे ही नतीजे जातिगत, क्षेत्रीय, लैंगिक तथा अन्य किस्म की असमानता के सन्दर्भ में अपेक्षित होंगे जब कि इनमें से प्रत्येक में समाज को स्तरीकृत करने की अपनी–अपनी अद्वितीय विशेषताएँ हैं। इनमें से प्रत्येक में यदि विशेष परिवारों की प्रतिकूल परिस्थितियाँ राज्य जैसी बाह्य एजेंसियों द्वारा दुरुस्त नहीं की जातीं तो सामाजिक स्तरीकरण और भी अधिक बढ़ता है।

जिन लोगों ने शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में विचार किया है, उनमें से अधिकतर इस बात पर सहमति व्यक्त करते हैं कि बाकी लोगों को शिक्षा के गिरते पैमाने के हवाले करके कुछ–एक ताकतवर लोगों तक अच्छी शिक्षा को सीमित रखना कोई अच्छी बात नहीं है। शिक्षा के कई उद्देश्य होते हैं, जिनमें स्पष्टता से सोच पाने की सामर्थ्य होना तथा ज्ञानसम्पन्न, विवेकी विकल्प चुन पाना और अपने जीवन को स्वयं नियंत्रित कर पाना, सार्वजनिक जीवन में सक्रियता और विचारशीलता के साथ भाग ले पाना, अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध खड़े हो पाना आदि शामिल हैं। केवल अमीरों को ही ऐसी शिक्षा की जरूरत नहीं है – बल्कि गरीबों को तो इसकी और भी अधिक जरूरत है। एडम स्मिथ निजीकरण के पथ–प्रदर्शकों में से एक थे, उन्होंने भी आज से करीब तीन सौ साल पहले माना था कि शिक्षा को बाजार के बाहर रखे जाने की जरूरत है। उनकी नजर में बाजार तथा वस्तुओं की खरीद–ओ–फरोख्त के माध्यम से व्यक्तिगत चुनाव की प्रक्रिया सामंती निरंकुशता और धर्मान्धता को परास्त करने का सबसे बेहतर तरीका था। इसके लिए विवेक और बुद्धि से चुनाव करने वाले व्यक्तियों की जरूरत थी। लेकिन स्मिथ इस बात पर बल देते थे कि बाजार को भी बेहतर प्रदर्शन करना है तो अच्छी शिक्षा और स्वास्थ्य तो मुहैया करवाए जाने होंगे।

स्मिथ का कहना था कि शिक्षा को बाजार की प्रक्रियाओं के माध्यम से नहीं खरीदा जाना चाहिए, जिससे अधिक पैसे वाले बेहतर शिक्षा पा लें और कम पैसे वाले कमतर। अच्छी शिक्षा सबको मिलनी चाहिए क्योंकि एक न्यायसंगत बाजार के लिए विचारशील और सूचना–सम्पन्न उपभोक्ता का होना एक पूर्व शर्त है। उनका तर्क था कि यदि ऐसा नहीं हो पाता, तो बाजार

सबसे बेहतर विकल्प मुहैया करवाने वाली प्रणाली नहीं रह जाएगा बल्कि ऐसे में अज्ञानता और ताकतवार की चालबाजी निरन्तर बने रहेंगे।

मौजूदा समय में समानता और आजादी के मूल्यों को पूरे संसार में व्यापक बल मिला है। माना जाता है कि उच्च पद और प्रतिष्ठा तक पहुँचने का रास्ता जन्म की वजह से प्राप्त विशेषाधिकार की बजाए योग्यता से हो कर गुजरता है। विद्वत्समाज (meritocracy) इस विचार पर आधारित होता है कि कठिन परिश्रम, प्रेरणा और समर्पण इस बात के लिए निर्णयकारी होने चाहिए कि कौन आगे तक पहुँचता है। लेकिन अगर अच्छी शिक्षा मिल पाना मुख्यतौर से इस बात पर निर्भर है कि आपका जन्म संयोग से अमीर या ताकत–सम्पन्न माता–पिता के घर में हुआ है तो विद्वत्समाज के आदर्श के साथ गम्भीर रूप से समझौता किया जा रहा होगा – निजीकरण असल में इसी बात को और गति देगा।

**अमन मदान** अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलुरु की फैकल्टी के सदस्य हैं। वे सामाजिक असमानता तथा पहचान की राजनीति के प्रश्नों पर काम करते हैं। वे 'एकलव्य', 'दिगन्तर', 'ऐकॉर्ड' आदि गैर सरकारी संस्थाओं से जुड़े रहे हैं। उनसे amman.madan@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : रमणीक मोहन